

मुकेश टिकाजी बोरा

बनाम

भारत संघ और अन्य

आपराधिक अपील संख्या 533/2007

अप्रैल 11, 2007

[डॉ. अरिजीत पसायत और एस. एच. कपाडिया, जे.जे.]

1. अनुमति दी गई।

2. इस अपील में चुनौती बंबई उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ द्वारा अपीलकर्ता द्वारा दायर बंदी पत्यक्षीकरण याचिका को खारिज करने के फैसले को दी गई है। रिट याचिका में भेरचंद टीकाजी बोरा उर्फ भरत उर्फ भेरमल उर्फ डिंपल उर्फ धायभाई (इसे बाद "बंदी के रूप में जाना जाएगा) के संबंध विदेशी मुद्रा संरक्षण और तस्करी गतिविधियों की रोकथाम अधिनियम, 1974 (संक्षेप में "कोफपोसा") की धारा 3(1) के तहत पारित हिरासत के आदेश दिनांक 27 अगस्त, 1998 को चुनौती दी गई थी।

3. अपीलकर्ता ने अपने भाई भेरचंद टीकाजी बोरा "बंदी" की हिरासत को चुनौती देते हुए रिट याचिका दायर की थी।

4. हालांकि रिट याचिका के समर्थन में कई आधारों का आग्रह किया गया था, लेकिन सुनवाई के समय केवल दो आधारों का आग्रह किया गया था। सबसे पहले चुनौती के आधार (ए)(1ए) से 1 (एफ) पर दिये गये तथ्यों के संदर्भ में यह तर्क दिया गया था कि जब हिरासत में लिये गये व्यक्ति को न्यायिक कार्यवाही में पूरी तरह से बरी कर दिया गया था, तो किसी भी हिरासत आदेश को पारित करने की कोई आवश्यकता नहीं थी और (बी) न्यायिक कार्यवाही में हिरासत में लिये गये व्यक्ति को

दोषमुक्त करने के इस पहलू पर हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी द्वारा ध्यान दिया जाना चाहिए था।

5. उपरोक्त दोनों कथन निम्नलिखित स्थिति के आधार पर दिये।

6. प्रवर्तन निदेशालय, बम्बई ने विदेशी मुद्रा और विनियमन अधिनियम, 1973 (संक्षेप में "फैरा") की धारा 37 के तहत प्रवीण पोपटलाल शाह के आवासीय परिसर की कुछ तलाशी ली। 16.1.1997 को उसी निदेशालय के कुछ अधिकारियों द्वारा "बंदी" के आवास की तलाशी ली गई। फिर निरोध आदेश दिनांक 27.8.1998 पारित किया गया। फैरा की धारा 9(1)(ए) के प्रावधानों के उल्लंघन के लिए बंदी को 18.1.1999 को कारण बतओ नोटिस दिया गया था। बंदी ने 30.3.1999 को अपना लिखित स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया। निर्णय व आदेश दिनांक 29.11.1999 को विशेष निदेशक प्रवर्तन द्वारा पारित किया गया।

7. उच्च न्यायालय ने कई मामलों में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून की स्थिति का विश्लेषण किया और माना कि यह हिरासत के आदेश के निष्पादन में अस्पष्टीकृत देरी का मामला नहीं था। इसके अलावा न्यायिक कार्यवाही में दोष मुक्ति हिरासत के आदेश को रद्द करने का आधार नहीं हो सकती। तदनुसार रिट याचिका खारिज कर दी गई।

8. अपील के समर्थन में अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने उच्च न्यायालय के समक्ष जो आग्रह किया था उसके अलावा प्रस्तुत किया कि कुछ प्रासंगिक दस्तावेज बंदी को उपलब्ध नहीं करवाये गये थे और इसलिए, वह प्रभावी प्रतिनिधित्व करने की स्थिति में नहीं था। हिरासत आदेश को इस आधार पर भी चुनौती दी गई थी कि हिरासत में लिये गये व्यक्ति का इकबालिया बयान बाद में 15.7.1994 को वापस ले लिया गया था और इसलिए कथित तौर पर 13.7.1994 को दिये गये मूल बयान का

इस्तेमाल नहीं किया जा सकता था।

9. दूसरी ओर, प्रतिवादी के विद्वान वकील ने कहा कि हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी द्वारा न केवल मूल बयान बल्कि तथाकथित वापसी बयान पर भी विधिवत ध्यान दिया गया था। उक्त प्राधिकारी ने वापसी बयान का उल्लेख किया और उस पर विचार करने के बाद महशूस किया कि हिरासत का आदेश आवश्यक था।

10. इस समय साधु रॉय बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (1975 क्रिमीनल लॉ जनरल 784) मामले में इस न्यायालय द्वारा कही गई बातों पर ध्यान देना उचित होगा। उस मामले में अंतिम पुलिस रिपोर्ट ने आपराधिक कार्यवाही समाप्त कर दी। सवाल यह था कि क्या ऐसी स्थिति में हिरासत का आदेश पारित किया जा सकता है। इस न्यायालय ने अन्य बातों के साथ साथ इस प्रकार की टिप्पणी की। प्राधिकारी के दिमाग का उपयोग न करने के विवाद के संदर्भ में एक ही आरोप के आधार पर एक ही व्यक्ति के खिलाफ हिरासत आदेश की वैधता पर पुलिस रिपोर्ट के आधार पर आपराधिक अदालत द्वारा आरोपी को आरोप मुक्त करने का क्या प्रभाव पड़ता है?

"किसी आपराधिक अदालत द्वारा आरोप मुक्त करना या बरी करना आवश्यक रूप से "सुरक्षा" उद्देश्यों के लिए उन्हीं तथ्यों पर निवारक हिरासत पर रोक नहीं है। लेकिन अगर इस तरह का आरोप मुक्ति या दोष मुक्ति इस आधार पर आगे बढ़ती है कि आरोप यदि झूठा या आधारहीन है, तो उसी निंदा किये गये तथ्यों पर निवारक हिरासत इस आधार पर असुरक्षित हो सकती है कि मीसा के तहत सख्ती का प्रयोग दुर्भावनापूर्ण या रंगीन तरीके से किया गया है।"

11. भंवरलाल गणेशमल जी बनाम तमिलनाडू राज्य और अन्य में। (1979 क्रिमीनल लॉ जरनल 462) यह देखा गया कि जहां देरी को न केवल पर्याप्त रूप से

समझाया गया है, बल्कि गिरफ्तारी से बचने के लिए बंदी के अडियल और दुर्दम्य आचरण का परिणाम पाया गया है, वहां "लिक" पर विचार करने का वारण्ट है जो तोड़ा नहीं गया, बल्कि मजबूत किया गया।

12. इस मामले में प्रतिवादियों द्वारा रिकॉर्ड पर रखी गई सामग्री स्पष्ट रूप से दिखाई देती है कि हिरासत में लिये गये व्यक्ति को हिरासत में लेने के सभी संभव प्रयास किये गये थे, लेकिन वह सफलतापूर्वक भागने में सफल रहा। अन्ततः कोफेपोसा की धारा 7(1)(बी) के तहत उद्धोषणा जारी की गई।

13. एक और बिंदु जिस पर जोर देकर आग्रह किया गया वह यह था कि जो नया आधार मौजूद है उस पर विचार किया जाना चाहिए। यह कहा गया है कि हालांकि नागरिक दायित्व से बचने के लिए हिरासत की अवधि समाप्त हो सकती है, यह आग्रह करने की अनुमति दी जा सकती है। इस संबंध में विशिष्ट संदर्भ में अनुलग्नक पी-10 से पी-14 तक दिया गया है, जिन्हें महत्वपूर्ण और भौतिक दस्तावेज बताया गया है। उनमें से दो हैं, स्वीकारोक्ति का मूल बयान और बाद में वापसी बयान और डिस्पेंसिंग अथॉरिटी द्वारा बंदी को जारी किया गया कारण बताओ नोटिस दिनांक 03.7.1995 और बंदी द्वारा दायर दिनांक 18.12.1995 और 17.1.1996 के जबाब जिसमें कहा गया है कि वह "डिंपल" नहीं है।

14. हालांकि इस पूर्वसर्ग से कोई झगड़ा नहीं हो सकता कि मामलों में नये आधारों का आग्रह करने की अनुमति दी जा सकती है, लेकिन यहां तथ्यात्मक पृष्ठ भूमि अलग है। आदिश्वर जैन बनाम भारत संघ और अन्य में (2006 ईसीआर 328(एस.सी)) अन्य बातों के साथ साथ यह इस प्रकार देखा गया: यद्यपि विद्वान अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल अपनी दलीलों में सही हो सकते हैं, लेकिन आम तौर पर हमें अपीलकर्ता को नये आधार जुटाने की अनुमति देकर भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत अपने विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग नहीं करना चाहिए, लेकिन, हमारी

राय में, हमें ऐसा करना पड़ सकता है क्योंकि हिरासत आदेश पर एक अलग दृष्टिकोण से विचार करना पड़ सकता है। यह सच हो सकता है कि हिरासत की अवधि समाप्त हो गई है, यह भी सच हो सकता है कि अपीलकर्ता पूरी अवधि के लिए हिरासत में रहा था, लेकिन यह कहना एक बात है कि इस परिस्थिति में बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट जारी नहीं की जा सकती है, लेकिन यह कहना दूसरी बात है कि हिरासत के आदेश को रद्द करना आवश्यक है ताकि बंदी सफेमा के तहत अपनी नागरिक देनदारियों से बच सके और अपनी प्रतिष्ठा की सुरक्षा भी कर सके. यह एक पुराना प्रचलित कानून है कि सभी दस्तावेज जो महत्वपूर्ण नहीं हैं, उन्हें उपलब्ध कराना आवश्यक नहीं है। जो आवश्यक हैं वह प्रासंगिक और भौतिक दस्तावेज हैं, लेकिन, इस प्रकार, सभी प्रासंगिक दस्तावेजों की आपूर्ति की जानी चाहिये ताकि बंदी को प्रभावी प्रतिनिधित्व करने में सक्षम बनाया जा सके जो कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 22(5) के तहत उसका मौलिक अधिकार है। प्रभावी प्रतिनिधित्व करने का अधिकार भी एक वैधानिक अधिकार है।

15. हालांकि उस मामले में यह नोट किया गया था कि कुछ प्रासंगिक दस्तावेज उपलब्ध नहीं करवाये गये थे, लेकिन वर्तमान मामले में स्थिति ऐसी नहीं है। इन दस्तावेजों के संबंध में उच्च न्यायालय के समक्ष कोई दलील नहीं दी गई, हालांकि वे उच्च न्यायालय के समक्ष रिकॉर्ड का हिस्सा थे। हिरासत का पहला आदेश और हिरासत के आधार 23.11.2005 को दिये गये थे। हिरासत के आदेश को रद्द करने के लिए भारत के संविधान, 1950 (संक्षेप में "संविधान") के अनुच्छेद 226 के तहत 2.12.2005 को रिट याचिका दायर की गई थी। बॉम्बे उच्च न्यायालय के समक्ष की रिट याचिका (आपराधिक) संख्या 146/2006 दायर की गई थी। 26.6.2006 को, इस न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत याचिका का निपटारा करते हुए उच्च न्यायालय को एक महीने की अवधि के भीतर मामले का निपटारा करने का निर्देश दिया और इस

तरह दिनांक 06.7.2006 को विवादित आदेश पारित किया गया। किसी भी कोण से देखने पर उच्च न्यायालय के आदेश में कोई खामी नहीं है और अपील खारिज करने लायक है, जिसका हम निर्देश देते हैं।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी यास्मीन खान (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।